

सांस्कृतिक परम्परा का अविच्छिन्न स्रोत कालिंजर दुर्ग

डॉ.शशि शेखर मिश्र

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
डॉ.आर.पी.रिछारिया कॉलेज बरूआसागर

इतिहास विख्यात कालिंजर प्राचीनकाल से ही अपने राष्ट्रीय स्तर व स्वरूप को समेटे हुए अब केवल एक गांव रह गया है। यह क्षेत्र इतिहास व संस्कृति की एक धरोहर है। राजनीतिक उत्थान पतन के लम्बे काल निक्षेप से इसके धार्मिक विशेष रूप से तीर्थ परिवेश को कम लोग ही जानते हैं और यह भी उतना ही सत्य है कि उसका इतिहास धूमिल हो सकता है किन्तु उसका तीर्थ रूप एक जीवन्त सत्य के रूप में आज भी विद्यमान है। वस्तुतः जब धर्म की कड़ियां किंचित शिथिल होने लगीं और राजनीति का महत्व बढ़ने लगा तो कालिंजर भी उस काल प्रभाव से बच न सका और राजनीति का एक प्रमुख घटना केन्द्र बन गया। भारत के तीर्थ स्थलों में भौगोलिक वैशिष्ट्य के कारण निरन्तर एक आकर्षण रहा है आज भी है भले ही वे तीर्थ स्थान हिमालय पर्वत मालाओं में हों अथवा सागर तट के पवित्र तीर्थधाम हों। कालिंजर भी वैसा ही है, वह इतिहास है, भूगोल है, धर्म-क्षेत्र है, तीर्थ स्थल है और एक सांस्कृतिक परम्परा का अविच्छिन्न स्रोत भी है।

स्थिति : प्रसिद्ध इतिहासकार टाल्मी ने अपने वर्णन में 'सन्द्राबनिस' नामक प्रान्त की चर्चा की है। यह सन्द्राबनिस प्रान्त सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड ही है ऐसा इतिहास के विद्वानों की सम्मति है। उसने सन्द्राबनिस को जिला कुरपुरना बतलाया है जो वास्तव में आधुनिक खजुराहों नगर का द्योतक है। इसी प्रकार अपिलोका का का तादात्म्य आधुनिक नगरों से किया गया है जो 'एपिलोधाका' आधुनिक महोबा है। इसी प्रकार कालिंजर को टाल्मी ने 'तमसिसका' कहकर सम्बोधित किया है। वैदिक साहित्य में कालिंजर गिरि को तपस्या स्थल कह कर अभिषिक्त किया गया है। तपस्वियों की प्रिय भूमि होने के कारण टाल्मी ने इसे 'तमसिसका' उचित ही कहा था। इस प्रकार उसके वर्णन में 'तपसिसका तपसिस' कालिंजर पर्वत का ही परिचायक है। प्रसिद्ध भूगर्भ वेत्ता फ्रेकलिन महोदय ने बुन्देलखण्ड को तीन प्राकृतिक भागों में बांटा है। तृतीय खण्ड बुन्देलखण्ड के उत्तर पूर्व में स्थित कम ऊँची पर्वत श्रेणियों को विन्ध्याचल की पहाड़ियां कह कर सम्बोधित किया है। ये पर्वत श्रेणियां कालिंजर विन्ध्यवासिनी होती हुयी आगे गंगानुवर्तनी होकर बढ़ जाती है। तीर्थों में पुनीत स्थल इन्हीं श्रेणियों में बुन्देलखण्ड के दक्षिण पूर्व भाग पर स्थित है। इसी प्रसिद्ध कालिंजर पर्वत पर ऐतिहासिक दुर्ग बना है।

वर्तमान में कालिंजर दुर्ग और कालिंजर ग्राम झांसी मण्डल के अन्तर्गत जनपद बांदा की तहसील नरैनी में आता है। इसकी भौगोलिक स्थिति $25^{\circ}23'/N$ अक्षांश $80^{\circ}25'/E$ देशान्तर है। इस ग्राम की स्थिति उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश प्रान्तों की सीमा पर है। उत्तर प्रदेश से यहाँ पहुँचने के लिए बाँदा से नरैनी होकर जाना पड़ता है। बांदा से इस स्थान की दूरी लगभग 60 कि.मी. है। इस मार्ग पर राजकीय एवं व्यक्तिगत बसों की सुविधा प्राप्त है। मध्य प्रदेश से आने के लिये मार्ग सतना से है जिसकी दूरी करीब 95 कि.मी. है। यह मार्ग नागौद तथा पहाड़ी खेड़ा होकर आता है। कालिंजर से नरैनी करीब 25 कि.मी. और सेन्ट्रल रेलवे का निकटस्थ स्टेशन अतर्रा करीब 40 कि.मी. है। कालिंजर नाम का बसाव एक छोटा सा कस्बा मात्र है जो कि कालिंजर पहाड़ी के नीचे स्थित है, इसीलिये इस क्षेत्र की पहाड़ी कालिंजर भी कहते हैं। कालिंजर पहाड़ी की ऊँचाई सागरतल से लगभग 1250 फुट तथा निकट के धरातल से 700 फुट है। इसका अनुमानित क्षेत्र लगभग 340 एकड़ के लगभग है। पर्वत के शीर्ष भाग में विसारित छोटे से समतल भूभाग को विशाल प्राचीन से घेरा गया था, जिसकी लम्बाई लगभग 6.5 कि.मी. है। इसी प्राचीर के कारण इस तीर्थ स्थल को दुर्ग के नाम से ख्याति प्राप्त हुयी।

नाम करण —

किसी भी स्थल के नामकरण के पीछे कोई न कोई कारण होता है। यह भी देखा गया है कि अनेक वार किसी विशिष्ट घटना वश नाम पूर्णतया परिवर्तित भी हो जाते हैं। जैसे प्रतापी राजा के शासन पर आने से अथवा किसी बड़ी घटना से। इसी प्रकार कभी-कभी लम्बे समय तक प्रयोग आते-आते ध्वनि परिवर्तन होता है, और नाम का अपभ्रंश रूप भी बन जाता है। कालिंजर का यह नाम पर्याप्त प्राचीन है और ऐतिहासिक ग्रन्थों में यही नाम देखने को मिलता है। वैसे जनश्रुति के अनुसार कालिंजर के अलग-अलग नाम रहे। सतयुग में इसे कीर्ति, गिरि, त्रेता में महदगिरि द्वापर में पिंगलगढ़ नाम दिये गये और कलयुग में कालिंजर कह कर पुकारा गया। कालिंजर शब्द कार्लजर का अपभ्रंश है। कार्लजर शिव का भी नाम है जिसका अर्थ मृत्यु को भी नष्ट करने वाला (कालंजटति इति कालंजर) होता है। शिव का इस स्थल से गहरा सम्बन्ध भी है जो कि यहां शिव के मन्दिरों, मूर्तियों से स्पष्ट है। इस स्थल का यह नाम निश्चित रूप से इसके परम पुण्य भूमि एवं तीर्थ स्थल होने का ही प्रमाण है। अस्तु, इसके नाम की व्याख्या यह हो सकती है कि जो पर्वत अपनी पवित्रता एवं पुष्प प्रभाव के कारण काल या मृत्यु के भय की भी नष्ट करता है अर्थात् मोक्ष प्रदान करता है वह स्थल कार्लजर है। कालान्तर में इसका अपभ्रंश कालिंजर बन गया। इसीलिये आज भी कालिंजर क्षेत्र में कविता की यह पक्तियाँ कही जाती हैं –

कालहिं जीर्ण करब जेहि गिरि पर।
ताकर नाम होय कालिंजर॥

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :

चन्देल राजाओं के प्रताप को अपने खण्डहरों में संजोये हुये भारत भूमि के अनेकों भूपतियों के उत्थान पतन का साक्षी कालिंजर अपने ऐतिहासिक परिचय का पिपासु नहीं है, तथापि यहाँ अल्प ऐतिहासिक उल्लेख वांछित विषय के विश्लेषण में सहायक होगा। कालिंजर का इतिहास अपने उत्तरावर्ती काल में जितना ही स्पष्ट एवं ख्याति प्राप्त है, पूर्ववर्ती काल में अनेक अन्वेषणों के बाद भी श्रृंखलाबद्ध रूप में प्राप्त नहीं होता। पुराणों में अनेक स्थलों पर इस पुण्य भूमि का तीर्थ स्थल के रूप में उल्लेख है तथापि ऐतिहासिक स्वरूप अत्यन्त धुंधला है।

कालिंजर रामायण काल और महाभारत काल में भी एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल ही रहा। यद्यपि लोकोक्ति है कि कौरवों से पांडवों ने जो पांच गांव माँगे थे उनमें एक यह भी था। (कांची, करक, कन्नौज, काशी और कालिंजर)। यह स्थल बिन्दुसार के अधिकार में रहा और किले पर स्थापित बौद्ध कालीन मूर्तियाँ अशोक के समय पर आयीं। शुंगवंश के संस्थापक पुष्यमित्र का इस पर अधिकार हुआ और 249 ई. पू. से 185 ई.पू. तक शुंगवंश का इस पर अधिकार रहा। इसके पश्चात हैयय वंशी कलचुरि कृष्ण ने 249 ई. में इस पर अधिकार किया। कौशास्त्री में प्राप्त शिलालेखों के आधार पर यह दुर्ग गुप्त साम्राज्य के अधिकार में रहा और हेनसांग के लेखानुसार हर्षवर्धन का शासन भी इस दुर्ग पर पूर्ण काल रहा। चन्देलों को यह दुर्ग प्रतिहारों से प्राप्त हुआ। दुर्ग निर्माण के लिये दो तथ्य दिये जाते हैं। प्रथम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार इसके संस्थापक मुहम्मद साहब के समकालीन केदार नाम के राजा थे और द्वितीय चन्देल राजाओं के पूर्वज चन्द्र वर्मा ने इस दुर्ग का निर्माण कराया। किन्तु यह दोनों तथ्य भ्रामक प्रतीत होते हैं। क्योंकि यह दुर्ग इनसे कहीं पूर्वकाल से हस्तान्तरित होता हुआ इतिहास में उद्भूत है। चन्देलों का दीर्घकालीन यशस्वी शासन अन्तिम राजा परिमार्दिदेव तक रहा। चन्देलवंश ही था जिसने इसके यशसौरभ को अपनी तलवार के बल पर भारत के कोने-कोने तक पहुंचाया। इस वंश में चन्द्र बृह्म, बाल बृह्म, ब्रजभूमि बृह्म, वेल बृह्म, मान बृह्म, सौथान बृह्म, गज बृह्म, ज्ञान बृह्म, पर बृह्म, जय शक्ति बृह्म, पूर्वी बृह्म, भक्ति बृह्म, जैति बृह्म, कौल बृह्म, कल्याण बृह्म, सूर्य बृह्म, रूप बृह्म, विधि बृह्म, राहिल बृह्म, मदन बृह्म, कीर्ति बृह्म, परिमाल देव आदि यशस्वी शासक हुए। 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस पर विजय पायी और गजनबी के आक्रमण के बाद यह दुर्ग नगर प्रथम बार मुस्लिम शासकों के हाथ में आया। 1234 में इल्तुतमिश ने इस पर आक्रमण कराया और 1530-31 में हुमायु ने कालिंजर पर आक्रमण

किया। 1545 में शेरशाह सूरी इस पर विजय प्राप्त करते हुये आहत हुआ। 1569 में अकबर के सेनापति मजनू खां ने इसे जीता और इसका किलेदार बना। इस प्रकार से 120 वर्षों तक यह दुर्ग मुगल शासकों के हाथ में रहा। मुगल शासन के बाद यह दुर्ग बुन्देला शासकों के हाथ में आया तथा चम्पतराय बुन्देल केशरी महाराज छत्रसाल, हृदयशाह, सभा सिंह, अमान सिंह, अनुरुद्धसिंह, सरनेत्र सिंह, धौकल सिंह आदि बुन्देलख नरेशों के हाथों शासित हुआ। बुन्देलों के बाद उन्हीं के शासन में मन्त्री पद सम्भालने वाले चौबेवन्श के रामकृष्ण चौबे ने इस पर धोका देकर अधिकार कर लिया और शासक बन बैठे। 18 जनवरी 1812 ई. को अंग्रेज जनरल मार्टेन्डिल ने आक्रमण किया और 2 फरवरी तक चौबे युद्ध में पराजित हो गये। 1857 में स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों ने इस पर आक्रमण करने की योजना तो बनाई किन्तु कर्नल रैमिन्गटन और जनरल ह्वाइट हाक के हाथों यह दुर्ग सुरक्षित रहा। अंग्रेजों ने इसे 100 वर्ष तक अपने हाथों में रखकर नेस्तानाबूद कर दिया।

इस ऐतिहासिक अल्प किरण के प्रकाश में कालिंजर का अतीत यह स्पष्ट करता है कि मध्य भारत का शासन सदैव कालिंजर को चुनौती स्वरूप स्वीकार करता रहा और तत्कालीन प्रत्येक महात्वाकांक्षी शासक का प्रयास इसे अपने अधीन करने के लिये रहा। इसका एक मात्र कारण इसकी भौगोलिक स्थिति रही है। उत्तर भारत के हर शासन को सत्ता में विस्तार पाने के लिए इस सशक्त द्वार से होकर जाना पड़ता था। वस्तुतः इसकी केन्द्रीय स्थिति चौराहे के समान थी। उत्तर दक्षिण, पूर्व, पश्चिम किसी भी दिशा में बढ़ने के लिये इस सुदृढ़ दुर्ग से टक्कर लेना आवश्यक था। यही कारण है कि यह दुर्ग मध्य युग तक शक्तिशाली राजाओं और सम्राटों की सर्वाधिक शक्ति सम्पन्नता का मापक बन गया।

पौराणिक तीर्थ क्षेत्र –

प्राचीन भारतीय धर्म साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में पवित्र तीर्थ स्थल कालिंजर को वही स्थान प्राप्त था जो आज काशी, बद्रीनाथ, द्वारिकाधीश, जगन्नाथपुरी एवं रामेश्वरम् आदि तीर्थों को प्राप्त है। इसकी पवित्रता और पुण्य प्रभाव भारत के कोने-कोने तक सुविख्यात था। यही कारण है कि प्राचीन ग्रन्थों में अनेक देवताओं और आदि ऋषियों के यहां पर तप करने अथवा यात्रा की चर्चा मिलती है। इस पावन भूमि का ब्रह्मा विष्णु महेश, सूर्य, चन्द्र, राम एवं बृहस्पति आदि देवताओं ने तथा महर्षि तुण्ड, अगस्त्य, धौम्य, भृगु, सारस्वत, अंगिरा वाल्मीकि आदि ऋषियों ने; द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर एवं परशुराम जैसे यौद्धों ने तपस्या एवं लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर सेवन किया।

कालिंजर तीर्थ की पवित्रता, पुण्य प्रभाव एवं माहात्म्य प्राचीन ग्रन्थों में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। यहाँ कतिपय उदाहरण दे देना समीचीन होगा। महाभारत की कथानुसार युधिष्ठिर ने यहां पर सूर्य यज्ञ किया था। महाभारत के ही निम्न श्लोक दृष्टव्य हैं –

अत्र कालिंज्जरं नाम पर्वतं लोकं विश्रुतम्। तत्र देवहृदे स्नात्वा गो सहस्रं फलं लभेत्॥

यो स्नातः स्नापयेत् तत्र गिरौ कालिंज्जरे नृप। स्वर्ग लोके महीयेत् नरौ नास्त्यत्र संशयः॥

अर्थात् यहाँ कालिंजर नामक गिरि लोक विख्यात है, यहाँ देवहृद नामक सरोवर में स्नान करके सहस्र गोदान का फल मिलता है। जो यहाँ स्नान करते हैं अथवा दूसरों को करवाते हैं, वह निश्चित रूप स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसमें रंच मात्र संशय नहीं है। शिवपुराण में शिव स्वयं इसकी स्थिति को बताते हुये इसका माहात्म्य वर्णन करते हैं –

अर्धं योजनं विस्तीर्णं ततः क्षेत्रं मम मन्दिरम्। कालंजरेति विख्यातं मुक्तिदं शिव सन्निधौ॥

गंगायाः दक्षिणे भागे कालिंजर इति स्मृतः। सर्वतीर्थ फलं तत्र पुण्यचैव ह्यनन्तकम्॥

अर्थात् दो कोस तक के विस्तार का वह क्षेत्र ही मेरा मन्दिर है। यह स्थल शिव की समीपता कराने वाला होने के कारण (मेरे नाम के अनुरूप) कालिंजर के नाम से प्रसिद्ध और मोक्ष को प्रदान करने वाला है। यह पवित्र स्थल गंगा के दक्षिण भाग में स्थित है तथा यहाँ सम्पूर्ण तीर्थों का पुण्य एवं फल बिना किसी प्रयास के ही मिलता है। इसी प्रकार भागवत पुराण में यह प्रसंग आया है कि प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के लिये अत्यन्त कठोर तप

कालिंजर पर्वत पर किया और वहां अघमर्षण नामक पवित्र तीर्थ स्थल पर आमन स्नानादि कर भगवान विष्णु को संतुष्ट किया –

तम बृहित मालोक्य प्रजा सर्ग प्रजापतिः।विंध्य पादानुप वृजय सोऽचरद दुष्करं तवः॥

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थ पापहरं परम।उपस्पृश्यानुसवनं तपसोतोषयद्धरिम॥

पद्म पुराण के अनुसार कालिंजर नव ऊखलों में से एक है। स्वयं ब्रह्मा ही इन ऊखलों पर स्थित रहते हैं और प्रलय कालीन जल निस्तरण इन ऊखलों से ही होता है।

रेणुका शूकरा, काशी, काली, काल बटैश्वरौः।कालंजर महाकालय ऊखला नव कीर्तितः॥

हरवंश पुराण की कथानुसार विश्वामित्र ने अपने सात पुत्रों को असंतुष्ट होकर निकाल दिया था। उनके पुत्रों ने महर्षि गर्ग के यहाँ शरण पायी किन्तु मांस भक्षण एवं असत्य भाषण के कारण वह महर्षि द्वारा शापित हो मृग बने और कालिंजर गिरि पर निवास किया। इस पुण्य भूमि में वास करते हुये सत्कर्मों के द्वारा उन्होंने शुभ गति को प्राप्त किया।

शुभेन कर्मणा तेन जाता, जातिस्मरा मृगा।भासानुत्पाद्य संविग्रा रम्ये कालिंजरे गिरौ॥

तेषां मरु साध्यतां पद स्नानानि भारत।तथैवाद्यापि दश्यन्ते गिरौ कालिंजरे नृप॥

रामायण काल में श्री राम वन विवरण करते हुये यहाँ पधारे थे और अंगिरा ऋषि के आश्रम तक आये थे। आज भी वहाँ राम के चरण चिन्ह अंकित है। सीता जी से सम्बन्धित अनेक स्थल भी यहाँ प्रसिद्ध हैं। महाभारत के ही अनुसार ब्रह्मा की पुत्री के पुत्र सुन्द और निसुन्द नामक देत्यों ने किसी सुन्दरी की प्राप्ति के लिये इस स्थल पर तपस्या कर सफलता प्राप्त की थी। स्वयं पाण्डवों का यहाँ आगमन उनके गुरु महर्षि धौम्य के निर्देश पर वनवास काल में हुआ था तथा राजसूय यज्ञ के हेतु कालिंजर पर स्वयं भीम ने अधिकार किया था। महर्षि मृगु ने यहाँ अग्नि की स्थापना कर यज्ञ किया था एवं यहीं पर अंगिरा ऋषि एवं बृहस्पति ने वेदों का स्मरण एवं पारायण किया था। यह सभी प्रसंग महाभारत में यत्र तत्र बिखरे हैं। लिंग पुराण एवं कूर्म पुराण में भी कालिंजर की तीर्थ रूप में चर्चा की गयी है। दक्ष यज्ञ विध्वंस के बाद सती शरीर को लेकर घूमते रहे उन्मत्त शिव को रोकने के लिये सती के शरीर को विष्णु के द्वारा खंड-खंड कर दिया गया और उसके टुकड़े 108 स्थलों पर गिरे। यह 108 स्थल सतीपीठ के नाम से भारत के कोने-कोने पर फैले हैं और कालिंजर को उनमें से एक सतीपीठ माना गया है। श्रीमद्भागवत कके एक प्रसिद्ध आख्यान के नायक जड़ भरत ने मृग मोह वश मृगयोनि इसी पर धारण की थी। महाभारत के अनुसार कालिंजर गिरि में एक महान हिरण्यबिन्दु नामक रमणीय कुण्ड स्थान है। वहीं अगस्त्य पर्वत में शंकर जी का पुण्य गिरि है और वहीं अगस्त्य ऋषि का श्रेष्ठ आश्रम भी है।

हिरण्यबिन्दुः कथितौ गिरौ कालिंजरे महान।अगस्त्य पर्वतो रम्यः पुण्यो गिरिवर शिवः।

अगस्त्यस्तु राजेन्द्र तत्राश्रम वरो नृपः॥

इस प्रकार से प्राचीन ग्रन्थों में स्थल पर कालिंजर गिरि का तीर्थ क्षेत्र के रूप में वर्णन भरा पड़ा है। यहाँ उन सभी स्थलों का उल्लेख सम्भव नहीं है। उपर्युक्त कुछ उद्धरण ही प्राचीन कालिंजर के तीर्थ स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं।

कालिंजर दुर्ग के निर्माण हेतु सात द्वारों का निर्माण किया गया था। दुर्ग मार्ग में राठौर महल से पहाड़ी की चढ़ाई प्रारम्भ होती है। प्रथम द्वार में जिसे पहले सिंह द्वार कहते थे और अब आलमगीर द्वार कहते हैं, मुहम्मद मुराद द्वारा लगवाया गया एक शिलालेख है। दूसरा द्वार काफिर घाटी के पास गणेश द्वार है और तीसरा द्वार चण्डी द्वार के नाम से जाना जाता है। इसमें 1119, 1272, 1578, 1580 और 1600 सम्वत के शिलालेख लगे हैं। चौथे द्वार का नाम बुध भद्र द्वार है जिसमें 1531 ई० का शिलालेख है। पंचम द्वार हनुमान द्वार के नाम से जाना जाता है जिसमें चन्देल राजाओं के नाम और 1530 एवं 1580 सम्वत खुदे हैं। छठा द्वार लाए फाटक कहलाता है। इसके काद अन्तिम सातवां द्वार है जिसे बड़ा फाटक एवं नेमि द्वार भी कहते हैं। इन द्वारों के मार्ग में जो करीब सात फर्लांग का है अनेक प्राचीन तीर्थ स्थल बिखरे

हैं। कालिंजर गिरि के लगभग बीस स्थल पवित्र स्थल के रूप में विख्यात है जिनका भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में आंकलन प्रस्तुत है।

भौगोलिक सन्दर्भों में तीर्थ –

सांस्कृतिक भूगोल सांस्कृतिक स्थलों के वास्तविक स्वरूप को मूल रूप में प्रस्तुत करने का कार्य करता है। इसी सन्दर्भ में तीर्थ स्थलों एवं धार्मिक स्थलों का अध्ययन होता है। तीर्थ स्थल का तात्पर्य स्थलों का अध्ययन होता है। तीर्थ स्थल का तात्पर्य स्थल की पवित्रता से होता है, जो कि दो सन्दर्भों में देखी जाती है। प्रथम तो प्राकृतिक वैचित्र्य है जो किसी स्थल विशेष से सम्बद्ध होता है एवं दूसरा ऐतिहासिक धार्मिक पवित्रता है, जिसका सम्बन्ध ऐतिहासिक अस्तित्व से होता है।

प्रारम्भिक काल में जबकि मानव प्राकृतिक रहस्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ था, वह इसे ईश्वरी वरदान के रूप में पूजता रहा। यही कारण है कि ऋग्वेद काल में आराधित लगभग सभी देतवा के वह अंग थे जिनकी सम्बन्ध ब्रह्माण्ड (यथा— इन्द्र, मित्र, आदित्य, सविता, पूषा, रात्रि वायु मंडल (यथा—इन्द्र, रुद्र, मरुत, वायु, पर्जन्य और एवं पृथ्वी मंडल यथा—पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति सोम आदि) से था पृथ्वी तल के उन भू आकारों ने जिनमें कुछ प्राकृतिक वैशिष्ट्य अथवा दूसरों से भिन्नता है जैसे पर्वत, मैदान, नदी, झरने, स्त्रोते, कुण्ड, जंगल सदैव ही मानव को जादुई आकर्षण प्रदान किया है। इसी का परिणाम है कि इनमें अनोखे प्रभाव का अनुभव कर इन्हें पवित्रता का स्थान प्रदान किया गया और यह मान्यता बनी कि यह स्थल पवित्रता प्रदान करने वाले हैं। इसीलिए कहा जाता है— “सर्व नद्यः सर्व शैलाः तीर्थ देवादि सेवितम्।” दूसरे कारक के रूप में ऐतिहासिक धार्मिक पवित्रता को भी अध्ययन में महत्वपूर्ण कारक माना जा सकता है। वह सभी क्षेत्र अथवा स्थल जिनका ऐतिहासिक व्यक्तियों से गहरा सम्बन्ध रहा है जैसे देव, असुर, ऋषि, मुनि और उच्च स्तरीय मानव अथवा इनसे सम्बन्धित कोई विशिष्ट ऐतिहासिक घटना घटी है को पवित्र स्थल का पद प्राप्त हो गया है। यह वर्गीकरण धर्मशास्त्रों की पुस्तकों में उपलब्ध है और पुराणों में इसके उदाहरण देखने को मिलते हैं। कालिंजर में दीर्घकालीन ऐतिहासिक उतार चढ़ाव के बाद भी जो कई स्थल तीर्थ स्वरूप देखने को मिलते हैं, वह इस बात का प्रमाण है कि उनके वर्चस्व के पीछे एक दृढ़ आधार है इन स्थलों का अध्ययन उन कारकों पर जो इनकी जीवन्तता के पीछे हैं कुछ प्रकाश अवश्य डालेगा।

प्राकृतिक वैशिष्ट्य का आकर्षण जो तीर्थ स्थलों का स्वरूप धारण करता है को निम्नांकित तीन भागों में विभाजित कर कालिंजर तीर्थ बिन्दुओं का परिचय प्रस्तुत है –

प्रतिष्ठित पर्वतीय भूआकार –

पर्वतों का सदैव ही हमारी धार्मिक धरोहरों के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस सन्दर्भ से हिमालय के पवित्र स्थलों को उच्च स्थान प्राप्त हुआ। कालिंजर में विभिन्न प्रकार के भूआकारों का निर्माण होता रहा है। पहाड़ियाँ, गुफायें, विशिष्ट चट्टानें एवं पत्थर की पेटियाँ, दर्रे स्त्रोते आदि। प्रायः पट्ट भू आकार अपने जादुई आकर्षण के कारण तीर्थ स्थल का स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

कालिंजर गिरि का जो विन्ध्यायन श्रेणी का ही एक अंश है काफी महत्व रहा है। पुराणों में इस पर्वत की ही प्रशंसा की गयी है, जिसका प्रमुख कारण अत्यन्त आकर्षण वाले इसके भूआकार है। भौगोलिक अध्ययनों के अनुसार विन्ध्यायन हिमालय से प्राचीन है और पर्वतों की आयु के अनुसार ही उनमें अपरदन एवं ऋतु अपक्षय के द्वारा नाना प्रकार के भूआकारों का निर्माण होता है। कालिंजर पहाड़ी जो कि गंगा के विशाल मैदान के दक्षिण अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण स्वयं ही महत्वपूर्ण थी, एक तीर्थ स्थल का स्थान प्राप्त कर सकी। विस्तृत मैदान में निवास करने वाले (विशेषकर प्रयाग के मैदान में) आर्यों को तप हेतु यह वनाच्छदित पवित्र पहाड़ी अत्यन्त निकट पड़ती थी। अतः प्रारम्भिक काल में यह स्थान एक तपस्थली के रूप में चित्रकूट की तरह) ख्याति प्राप्त कर सका और इसके बाद तीर्थ सील बना। पर्वत के पवित्र स्थलों का संक्षिप्त विवरण उनके भौगोलिक वैशिष्ट्य के साथ निम्नवत् प्रस्तुत है –

सीता सेज –

यह एक विशाल प्रस्तर की प्राचीन कालकारी है यह एक छोटा सा गुफानुमा स्थल है, जिसके अन्दर एक ही पत्थर को काटकर तख्तनुमा शैय्या का निर्माण किया गया है। कोई जोड़ न होना इसकी विशेषता है। यह चन्देलों के आविर्भाव से भी पूर्व की है तथा प्राकृतिक प्रभावों को भूगोल के विद्यार्थी इसमें स्पष्ट देख सकते हैं। किवदन्ती है कि राम यहां आये थे तब उन्होंने इस शिला पर विश्राम किया था। एक ही प्रस्तर से निर्मित यह शिलापट्ट दर्शनीय है।

मृग धारा –

मृगधारा देखने में सात प्रस्तर मृग मुख है जिनसे सदैव पानी टपकता रहता है। पौराणिक कथानक के अनुरूप विश्वामित्र के सात पुत्र शापवश यहाँ मृग के रूप में रहते थे। आजकल यह स्थल अत्यन्त आकर्षण का केन्द्र है और जन मानस में इसकी पवित्रता का श्रेष्ठ स्थान है यही कारण है कि कर्म कांडी पण्डितों द्वारा श्राद्ध मन्त्रों में 'सप्य व्याधा दशारण्ये मृगाः कालंजरे गिरौ' का उच्चारण किया जाता है। वस्तुतः यह एक प्राकृतिक पर्वतीय जन स्त्रोत है जिस पर प्रस्तर मृग मुख निर्मित कर दिये गये हैं। उत्थित प्रस्तरों में स्थल पटल पर थोड़े अपरदन से प्रायः इस तरह के जल स्त्रोत बाहर आ जाते हैं, क्योंकि भौगोलिक जल धारायें उत्थित प्रस्तरों के कारण ऊपर आ जाती है।

स्वर्गारोहणी –

कालिंजर पहाड़ी की यह सर्वाधिक आकर्षक स्थल है। वस्तुतः यह एक विशाल प्राकृतिक (जिसमें बाद में अनेकों निर्माण भी कराये गये) गुफा है जो सदैव जल से भरी रहती है। पर्वतीय गुफाओं में भौगर्मिक जल स्त्रोतों के खुल जाने से प्रायः पानी भर जाता है। यह स्थल मुख्यतः इन्हीं दो पर्वतीय भूआकृतियों का सम्मिलित स्वरूप कहा जा सकता है। अब भी इस विशाल गुफा की छत से बूंद-बूंद पानी टपकता रहता है। गुफा में तीन दालानें हैं जिनमें पानी क्रमशः गहरा होता जाता है। सात विशाल स्तम्भ हैं जो गुफा की छत को सहारा दिये हुये हैं। अन्दर गुफा में अत्यधिक अन्धकार है और दो स्तम्भ बिल्कुल दिखाई नहीं देते हैं। गुफा की दालानों में अन्धकार और गहाराई क्रमशः बढ़ती जाती है। पहली दालान चार फुट दूसरी नौ फुट और तीसरी अत्यधिक गहरी है। एक अन्धेरी पर्वतीय विशाल गुफा में भरा हुआ जल और एकान्त होने के कारण सर्पों आदि की उपस्थिति ने इसके स्वरूप को भयावह किन्तु जादुई आकर्षण वाला बनाकर पवित्र तीर्थ का रूप प्रदान किया है। इसीलिये इसके सन्दर्भ में कहते हैं— “देव रूप मज्जन से पावें, अन्त समय सुरलोक सिधावें।”

पाताल गंगा –

पाताल गंगा भी एक गुफा है जिसके अन्दर एक छोटा सा जलाशय है। विशाल प्रस्तर खण्ड में गुफा की आकृति बनी हुयी है और नीचे छोटा सा जल कुण्ड है। यहाँ तक पहुँचने के लिये लगभग 150 फीट की गहलाई तक उतरना पड़ता है जिसके लिये सीढ़ियाँ बनी है। सम्भवतः इसी कारण इसे पाताल गंगा कहा गया है। चट्टानों से अब भी पानी टपकता रहता है जिसकी मात्रा वर्षा काल में बढ़ जाती है। इस गुफा में 1339, 1534 और 1640 ई. के लेख खुदे हुये हैं जिनसे इस छोटी गुफा बावली की ख्याति का पता चलता है। इसे बाण गंगा का नाम भी दिया गया है। किवदन्ती है कि विषपान करने के बाद शिव ने यहाँ विश्राम कर शान्ति प्राप्त की थी। इस स्थल के लिये वहाँ यह पंक्तियाँ कहीं जाती हैं –

नाम वाण-गंगा जेहिं जाना,मज्जन ते नाशत अध नाना।

कह पाताल गंगा सब कोई,देवन को दुर्लभ है सोई।।

काल भैरव –

स्वर्ग रोहणी के पास ही काल भैरव की विशाल प्रतिमा है। पौराणिक कथानक के अनुसार दक्ष को नष्ट करने के लिये काल भैरव की उत्पत्ति शिव के द्वारा की गयी थी। यही वह स्थल है जहाँ सती शरीर का अंश गिरने के कारण कालिंजर को सती पीठ का स्थान प्राप्त हुआ है। इस स्थल का भौगोलिक आकर्षण जल स्थित वह शिला है जिसकी ऊँचाई लगभग 20

फुट है और जिस पर काल भैरव कीमूर्ति उत्कीर्ण की गयी है। इस विशाल खड़े प्रस्तर पर प्रयास पूर्वक काल भैरव की मूर्ति को नरमुण्ड माला और अस्त्रों-शस्त्रों सहित तैयार किया गया है।

जल स्थलों की धार्मिक प्रतिष्ठा –

जल मानव की अभिन्न आवश्यकता है और स्थलों ने सदैव मानव को आकर्षित किया है स्थल अनेक भौगोलिक स्वरूपों में पृथ्वी पर देखे जाते हैं, यथा नदी झील, झरने और भारत ने अपनी सभ्यता के आदि काल से स्थलों के महत्व को स्वीकार किया है। यही है कि वैदिक पुरुषों ने “नदी स्तुति” कर उनका सम्मान किया है, और आदिकाल से ही इनको पूजा एवं आदर किया जाता रहा है।

कालिंजर गिरि में जल स्थलों की बहुतायत है। यह सम्पूर्ण पहाड़ी पर यत्र-तत्र बिखरे हैं, तथा इन सभी को पवित्र मानकर तीर्थ बिन्दु का स्थान प्रदान किया गया है। सुपष्ट है कि पहाड़ी पर अनेक भौगोलिक जल धारायें पर आ गयीं और स्थल सृथल पर जलाशयों के रूप में अवस्थित है। कुछ प्रमुख जलाशय इस प्रकार हैं –

पाण्डव कुण्ड –

यह एक छोटा सा जलाशय है जो कि सामयिक है। वर्षा काल में यहाँ जल का अच्छा एकत्रीकरण हो जाता है। इसका जल अत्यधिक स्वच्छ रहता है। कथा है कि पांडवों ने अपने वनवास काल में यहाँ कुछ समय व्यतीत किया था और द्वारिका नरेश श्री कृष्ण उनसे यहां मिलने आये थे। उनकी स्मृति स्वरूप एक पत्थर पर उनके चरण सिंह अंकित हैं। इस कुण्ड के महात्म्य में यह सोरठा कहा जाता है –

पाण्डव कुण्ड बखान, महिमा ताकी अमित।

मज्जन ते अध हानि, पूजन करत अनेक फल।।

वृद्धक स्थल –

यह अत्यन्त प्राचीन युग्म जलाशय है जिसकी विशेषता है युग्म जलाशय। क्षेत्र में इनका नाम बुड्ढा-बुड्ढी है तथा प्राचीन नाम रवि शशि क्षेत्र है। इन तालाबों की भौगोलिक विशेषता यह है कि यह एक ही दीवाल से अलग होते हैं तथापि जल के तापमान में अन्तर रहता है। एक जलाशय का जल ऊष्ण रहता है जबकि दूसरे जलाशय का शीतल (जल बार-बार वर्षा काल में दोनों जलाशयों के मिल जाने के कारण दीवाल के अन्दर ही अन्दर विखण्डित हो जाने के कारण इन जलाशयों के तापमान का अन्तराल अब अस्त होता जा रहा है) सम्भवतः इसी कारण इनका नाम रवि शशि क्षेत्र रखा गया है। तापमान के अन्तर का एक मात्र भौगोलिक कारण यह है कि यद्यपि ऊपर से देखने पर यह जलाशय मात्र एक दीवार से अलग दीखते हैं, किन्तु इनकी जलापूर्ति करने वाले भौगोलिक स्रोत भिन्न-भिन्न हैं तथा भूगर्भ में गहराई की भिन्नता से आने के कारण इन स्रोतों के जलीप तापमान में अन्तर होता है। पौराणिक कथानकों के अनुसार युधिष्ठिर ने यहाँ सूर्य आराधना की थी और मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा रामकथा सुनी थी। काशी नरेश का कुष्ठ रोग इसके जल में स्नान करने से दूर हुआ था। आज भी चर्म रोग निदान के लिये लोग यहां स्नान करते हैं। सम्भवतः रवि कुण्ड के जल में सल्फर जैसे पदार्थ घुले हैं। आवश्यकता इसके जल के रासायनिक विश्लेषण की है क्योंकि आज भी यहां कहा जाता है –

रविवासर संक्रान्ति मझारा, शुक्ल पक्ष दशमी रविवारा।

मज्जन करे सहित अविकारा, कुष्ठ व्याधि होवे जरक्षारा।।

कोटि तीर्थ –

कालिंजर गिरि पर स्थित यह सबसे बड़ा प्राकृतिक सरोवर है वस्तुतः यह सरोवर प्राकृतिक है किन्तु बाद चन्देल शासकों ने व्यवस्थित कर इसके घाटों का निर्माण कराया है। यह सम्पूर्ण वर्ष रहने वाला जलाशय है और वर्षा काल में अपने पूर्व वैभव पर रहता है। जैसा कि पहले कह कुके हैं, कालिंजर गिरि की अनेक भूगर्भिक जल धारायें विशिष्ट भौगोलिक आकार

के कारण ऊपर आ गयी है, जिसने परिणाम स्वरूप इसकी जलापूर्ति होती है। इसे कोटेश्वर ऋषि का स्थान कहा गया है और महाभारत के वन पर्व के हिरण्यविन्दु नामक सरोवर को इसी से सम्बद्ध किया जाता है। अपने शीतल स्वच्छ जल के कारण यह सरोवर अत्यन्त आकर्षक है। इसके विषय में ख्याति है।

कोटि तीर्थ जले स्नात्वा पूर्णायन्ता महाशिवम्। कोटि जन्मर्जितात पापान्मुच्ये नाम संशयः।।

ऋषि बाबली –

इस छोटे से ताल को क्षेत्र में ऋषि बीहड़ भी कहते हैं। इस तालाब में स्नान के पश्चात् नीलकण्ठेश्वर देव के पूजन अर्चन का विशेष महत्व है। ऐसी जनश्रुति है कि यहाँ स्नान करने से लोगों को अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है।

इन बड़े सरोवरों के अतिरिक्त छोटे-छोटे तालाब एवं कुण्ड पूरे गिरि में फैले हुये हैं। वस्तुतः कालिंजर का ऐसा कोई भी तीर्थ बिन्दु नहीं जहाँ पर छोटा सा ही सही एक तालाब या पोखर न हो। लक्ष्मण तलेया, राम कटोरा, मातंग वापिक, नारायण कुण्ड आदि जलाशयों के नाम और लिये जा सकते हैं।

पूर्व काल में भारत वर्ष का एक बहुत बड़ा भू-भाग वनाच्छादित था। इन अरण्यों अथवा वनों के सन्दर्भ प्राचीन साहित्य में स्थान-स्थान पर सुलभ हैं। ये अरण्य ऋषि मुनियों के तपस्या स्थल रहे हैं। जिनका प्रयोग वह तपस्या के लिये करते थे। यह लोग अरण्य पर्यावरण का अत्यन्त आदर करते थे क्योंकि इनसे ऋषियों की अनेक मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। यही कारण है कि अरण्यों अथवा वनों को भारतीय ऋषि संस्कृति का पालन अथवा प्रथम स्कूल कहा करते थे। ऋषियों को हमारे समाज में अत्यन्त ऊँचा स्थान प्रदान किया गया था। ऐसी धारणा है कि ऋषियों अध्यात्म के मार्ग से परा-प्राकृतिक शक्तियों को प्राप्त किया। जिनका स्मरण आज भी किया जाता है और उनसे संबद्ध स्थल पुनीत होकर तीर्थ स्थल का स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

कालिंजर गिरि प्रारम्भ में घना अरण्य रहा है अगर यह कहा जाये कि सम्पूर्ण कालिंजर मात्र एक अरण्य था तो अतिशयोक्ति न होगी। कालिंजर के घने अरण्य और यहाँ के जल स्रोत ही हैं। जिन्होंने तपस्वियों को आकर्षित किया था। धीरे-धीरे कालिंजर के अतीत ने धार्मिकता से हटकर राजनीति में प्रवेश पाया तो यहां राजनीति नटी के नर्तन से विस्फोटित बारूद की दुर्गन्ध और तलवारों की चमक से अरण्यों के स्थान पर अट्टालिकायें प्रतिष्ठित हुयीं। आज राजमहलों की चमक खण्डहरों में परिवर्तित ही ऊँची-ऊँची घास और झाड़ियों के मध्य ऐसी प्रतीत होती है मानो कालिंजर पुनः अपने अतीत की ओर निहार रहा हो। कालिंजर वन में झाड़ियाँ, वेर, कैथ, तेंदू, अचार और पलाश और वनस्पतियाँ ही प्रमुख हैं। प्राचीन साहित्य में सुलभ और वर्तमान में प्राप्त कालिंजर के अरण्य तीर्थ बिन्दु इस प्रकार हैं।

वन खण्डेश्वर तीर्थ –

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह स्थल अरण्य के मध्य में स्थित है। यहां शिव की लिंगा कार लगभग साढ़े पांच फीट उँची प्रतिमा है तथा निकट ही पार्वती देवी की मूर्ति है। इस स्थल के वन प्रान्त की महत्ता को तो इसी से स्पष्ट है कि इसका नाम वनखण्डेश्वर पड़ा है। इस स्थल के चारों तरफ तथा मार्ग में भी घना जंगल पड़ता है। सघन वन में यह स्थल निश्चय ही शिव भक्तों की तपो भूमि रहा होगा।

माण्डूक भैरव –

यह वनीय खण्ड युग धारा के समीप है। इस को लोग मेंडुकी भैरव के नाम से भी पुकारते हैं। वैसे यह स्थल अधिक जंगल युक्त तो नहीं है किन्तु अतीत में यहां अत्यन्त घना वन था और इसे तप के लिये उपयुक्त स्थान माना जाता था। आज भी भैरव पूजक एकान्त सेवी लोग यहां भैरव आराधना करते हैं।

शिव सर गंगा –

यह स्थल दुर्ग से उत्तर की ओर पड़ता है और बड़ी तराई से पूर्व की ओर स्थित हैं। अवश्य ही पूर्व काल में यह सुन्दर तप स्थली रहा होगा। यहां एक छोटा जलाशय भी है जिसके नाम पर इसे शिव सर गंगा कहते हैं। यह स्थल अत्यन्त निर्जन एकान्त और सुन्दर वन स्थली है। यहाँ का वन्य दृश्य आज भी अवलोकनीय है और शेषशायी विष्णु की दो दुर्लभ प्रतिमायें इस बात का प्रमाण है कि यह स्थान पूजा अर्चन हेतु किसी समय श्रेष्ठ स्थल रहा है। इस प्रकार से एक ही पहाड़ी पर अनेक तप स्थलों ने कालिंजर को तीर्थ क्षेत्र का स्थाप्य प्रदान कर दिया है। तीर्थ को तीर्थ स्थल एवं तीर्थ क्षेत्र के दो भागों में विभाजित किया जाता है। इस क्षेत्रीय विभाजन पुराणों में भी इंगित किया गया है।

यह मान्यता प्रदान की गयी है कि एक तीर्थ क्षेत्र में अनेकों तीर्थ स्थल होते हैं। इसी दृष्टिकोण से कालिंजर को तीर्थ क्षेत्र कहकर पुकारा गया है। एक तीर्थ क्षेत्र के तीर्थ स्थल समान प्रभाव एवं ख्याति के अथवा अलग स्तर के भी हो सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि एक प्रमुख तीर्थ हो और शेष उसके उपतीर्थ हों। तीर्थ स्थलों का विभाजन प्राकृतिक वैशिष्ट्य अथवा ऐतिहासिक धार्मिक स्थल के रूप में दो खण्डों में किया जाता है। कालिंजर में दोनों ही कोटि के स्थल दर्शनीय हैं, जिसमें प्राकृतिक वैशिष्ट्य वाले भौगोलिक स्थलों का संक्षिप्त विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक महत्व का श्रेष्ठ तीर्थ बिन्दु नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर है। यह अद्भुत उदाहरण है जो अब विनष्ट हो रहा है। मन्दिर के भित्ति चित्र, उत्कीर्णन एवं भवन शैली चन्देल कालीन कला की उन्नति के अनेकों प्रमाणों में से एक है। पूरे पर्वत क्षेत्र में फैली हुयी हजारों मूर्तियां बुन्देलखण्ड का जीता जागता संग्रहालय है जिनके संरक्षण की आवश्यकता है।

कालिंजर गिरि बुन्देलखण्ड की एक बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। इसे मात्र एक ऐतिहासिक स्थल माना जावे क्योंकि ऐतिहासिक अतीत तो बीत गया और इसका पुनरागमन होना नहीं है। इस स्थल का तीर्थ स्वरूप अक्षुण्य है जो कालवश समाज की दृष्टि से ओझल हो गया है। इसे पुनः स्थापित होना चाहिए। प्राकृतिक भूआकार, भूस्वरूप एवं प्रकृति का चमत्कारिक वैशिष्ट्य और उससे सम्बद्ध धार्मिक भावनार्य दोनों ही चिरन्तन हैं। कालिंजर, धर्म एवं संस्कृति पर भौगोलिक प्रभाव के दृष्टिकोण से, कालिंजर भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही स्वरूपों में बुन्देलखण्ड का प्रतिनिधित्व करता है। अन्त में –

नील कण्ठों यत्र देवो, भैरवाः क्षेत्र नायकाः।

कोटि तीर्थ यत्र तीर्थ मुक्तिस्तत्र न संशयः॥

संदर्भ –

1. हरप्रसाद शर्मा— कालिंजर — प्रतिभा प्रकाशन अन्तर सुइया इलाहाबाद—3, पृष्ठ—56
2. उपर्युक्त पृष्ठ—56—57
3. उपर्युक्त पृष्ठ—99
4. आदित्य ग्रन्थमाला—प्रथम भाग, पृथ्वीराज रायसी सम्पादक व प्रकाशक — बद्री प्रसाद तिवारी एवं वंशीधर श्रीवास्तव विल्सन प्रेस चरावारी सं० 1994
5. हरप्रसाद शर्मा — कालिंजर, पृष्ठ—102
6. भागवत पुराण, पृष्ठ स्कंध, श्लोक 20—21
7. भागवत पुराण, प्रथम अध्याय, श्लोक 20—21
8. पद्म पुराण, प्रथम अध्याय, श्लोक 52—53
9. हरवंश पुराण, पर्व एक अध्याय 21, श्लोक 24—26
10. महाभारत, वन पर्व, तीर्थयात्रा प्रकरण, श्लोक 20—21
11. पी. फिकलेट (अंग्रेजी शोध पत्र), धार्मिक भूगोल के मूल प्रश्न प्रकाशित रीडिंग्स इन कल्चरल ज्योग्रेफी सम्पादित, पी.एल. बैगर एवं एम. डब्लू. काइकसेल 1962, पृष्ठ—95
12. शिवदत्त ज्ञानी, वेद कालीन समाज—1967, पृष्ठ—226
13. कालिंजर महात्म्य, प्रथम अध्याय



14. ए.बी. एल. अवस्थी (अंग्रेजी शोध पत्र), स्टडीज इन स्कन्ध पुराण, प्रकाशित, ज्योग्रेफिकल डेटा 1965, पृष्ठ-168
15. आर.के. त्यागी (अंग्रेजी शोध पत्र), प्रि हिस्टोरिक तीर्थाज आफ राजस्थान, ए स्टडी इन रिलीजियो कल्चरल ज्योग्रेफी प्रकाशित, शोधक, वालूम 4-1975
16. आर. भट्टाचार्य, इतिहास का अनुशीलन, 1664, पृष्ठ-66
17. आर. के. त्याग (अंग्रेजी शोध पत्र), प्रि हिस्टोरिक तीर्थाज आफ राजस्थान-ए स्टडी इन रिलीजियो कल्चरल ज्योग्रेफी, शोधक, वालूम 4-1975